International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 496-499

भारत में 20वीं शताब्दी में नारीवादी संगठन एवं संघर्ष : एक अध्ययन

अंजना
शोध–छात्रा, मध्यकालीन/आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

19वीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों की भारतीय स्त्रियों के कष्टों एवं उनके सुधार की आवश्यकता की परिभाषा 20वीं शताब्दी के आरम्भ तक बदल गयी तथा समाज सुधारकों व बुद्धिजीवियों का सारा ध्यान महिलाओं को समाज का उपयोगी सदस्य समझने पर केन्द्रित हो गया और 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक महिलाओं को अपने जीवन के निर्णयों को स्वयं लेने के अधिकार की माँग उठायी गयी। जो कि वास्तव में पिछले कई दशको में महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए प्रारम्भ किये गये अभियानों के सन्दर्भ में समय की आवश्यकतानुसार भारतीय महिलाओं के लिए समानता, विशेषकर आत्मनिश्चय के अधिकार क्षेत्र की ओर अग्रसर हुई, जिसके अन्तर्गत कालान्तर में पुरुष एवं स्त्री के कानूनी अधिकारों की समानता का विषय एवं लक्ष्य महत्वपूर्ण था।

19वीं सदी के आखिरी समय तक समाज–सुधार आन्दोलनों का असर दिखाई देने लगा, जिसका परिणाम 20वीं सदी में भारतीय महिलाओं के सामाजिक एवं राजनैतिक जागरण के रूप में प्रकट हुआ। वास्तव में 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक कुछ वर्ष भारत के लिए चतुर्दिक जागरण का काल था, इस समय में भारत प्रारम्भिक मान्यताओं को तोड़कर संयुक्त रूप से लगभग प्रत्येक क्षेत्र में नवीन उपागमों के साथ प्रविष्ट हुआ। यद्यपि 19वीं एवं 20वीं सदी में हुए समाज–सुधार आन्दोलनों को प्रारम्भ एवं प्रचारित करने के तीन प्रमुख साधन थे, प्रथम – पुरुषों द्वारा सार्वजनिक मुद्दों में सक्रियता और सुधार करने की इच्छा। द्वितीय – इसी दिशा में सरकार द्वारा कानून बनाने की पहल एवं तृतीय – स्वयं स्त्रियों ने इस दिशा में कदम उठायें।[1]

20वीं शताब्दी में नारी शिक्षा को बढ़ावा दिया गया, जो कि 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में आरम्भ हो चुका था। ईसाई मिशनरियों के अतिरिक्त भारतीय प्रबुद्ध वर्ग ने भी नारी शिक्षा को समाज के लिए अनिवार्य बताते हुए अनेक प्रयत्न किये। 20वीं सदी के आरम्भिक वर्षों में महिलाओं को उच्च शिक्षा के लिए भी प्रोत्साहित किया गया तथा इसी क्रम में ''1916 ई0 में भारत में 'प्रथम महिला विश्वविद्यालय' की स्थापना की गयी, जो कि श्री विट्ठलदास थाकरसे के सहयोग से हुआ। इस विश्वविद्यालय को विट्ठलदास की माता के स्मरण में उनके नाम पर 'श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसे' महिला विश्वविद्यालय (SNDT University) स्थापित किया गया, जिसके प्रथम प्रधानाचार्य श्री धोंदों केशव कर्वे थे।''[2]

इस समय तक महिलाएँ शिक्षा के प्रभाव से संगठित हो रही थी। जिसका प्रभाव सर्वप्रथम स्वदेशी आन्दोलन (1905 ई0) में बड़े पैमाने पर दिखाई दिया।''[3] सन् 1905 ई0 के पश्चात् भारत में नारीवादी एवं राष्ट्रवादी आन्दोलन दोनों साथ–साथ चल रहे थे, जिनमें अधिकांशतः ''राष्ट्रवादियों की पत्नियाँ, बहनें व पुत्रियाँ अग्रणी रूप में शामिल थी, जिन्होंने जन सामान्य को शिक्षित किया तथा उनमें राष्ट्र प्रेम की भावना जागृत करते हुए राष्ट्रवादी आन्दोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित भी करती थी।''[4]

20वीं शताब्दी के शुरुआती वर्षों में अनेक छोटे–छोटे महिला संगठन स्थापित हुए, जैसे बंगाल में बंग महिला समाज एवं अघोरी कामिनी नारी समिति, महाराष्ट्र में सतारा अबलोन्नति सभा, बंगलूर में महिला सेवा समाज, बनारस में भारत महिला परिषद् एवं इलाहाबाद में प्रयाग महिला समिति जैसे स्थानीय एवं क्षेत्रीय संगठनों का उदय हुआ। जिनमें से कुछ क्रियात्मक कार्यशील संगठन थे, जबकि कुछ स्त्रियों की चर्चा सम्बन्धी मंच थे।''[5] कालान्तर में राष्ट्रीय स्तर पर कई महिला संगठनों की स्थापना हुई जिनमें ''सन् 1917 ई0 में 'Women's Indian Association' की स्थापना हुई। सन् 1925 ई0 में 'National Coucil of Indian Women' एवं सन् 1927 ई0 में All India Women's Conference जैसे कई संगठनों का गठन हुआ, जिसके अन्तर्गत महिला सम्बन्धी समस्याओं पर चर्चा हुई तथा महिलाओं के अधिकारों, शिक्षा, श्रम आदि मुद्दों को प्रमुख विषय माना गया।''[6]

'All India Women's Conference के सभा में अन्य सभी महिला संगठनों के प्रयासों द्वारा ''बाल विवाह निरोधक कानून 1927'' का प्रस्ताव हर विलास शारदा द्वारा रखा गया।'',[7] जो सितम्बर 1929 ई0 को ब्रिटिश सरकार द्वारा पास किया गया तथा 01 अप्रैल 1930 ई0 से प्रभावी हुआ, जिसे 'शारदा एक्ट'[8] के नाम से भी जाना जाता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत ''विवाह योग्य आयु पुरुष की 18 वर्ष तथा कन्या की 14 वर्ष की आयु सुनिश्चित की गयी। इस कानून के दो उद्देश्य थे – प्रथम यह कि कम आयु कन्याओं का विवाह रोकना ताकि बाल–विधवा होने से बचाना तथा दूसरा उद्देश्य यह कि बाल–विवाह खत्म होने से बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास की मुख्य बाधा उनके भौतिक एवं नैतिक पतन को हटाना है।''[9]

इन महिला संगठनों में कई उच्च शिक्षित महिलाएँ शामिल थी, जिनमें सरोजनी नायडू, ऐनी बेसेण्ट, सरला देवी चौधरानी, मैडम भीकाजी कामा, राजकुमारी अमृत कौर, सुचेता कृपलानी, अरुणा आसफ अली आदि अनेक महिलाएँ नेतृत्वकर्त्ता के रूप में थी, जिन्होंने महिला आन्दोलनों का स्वयं नेतृत्व किया। वहीं 20वीं सदी में महिलाओं की पत्नी, पुत्री के अतिरिक्त माता के स्वरूप को अधिक महत्ता दी जाने लगी तथा 'मातृभूमि' व 'राष्ट्रमाता' की संकल्पना अधिक बलवती हुई तथा महिलाओं की शिक्षा को अनिवार्य एवं आवश्यक बताया गया। सन् 1906 ई0 में 'भारतीय समाज सम्मेलन' में सरोजनी नायडू ने कहा कि ''असली राष्ट्र निर्माता हम (अर्थात् महिलाएँ) है तथा हमारे सक्रिय सहयोग के बिना प्रगति के किसी भी बिन्दु पर की जाने वाली सभी बैठकें एवं कांग्रेस व्यर्थ होगी। आप सभी अपनी महिलाओं को शिक्षित करें और देखें कि राष्ट्र स्वयं अपनी रक्षा कर लेगा क्योंकि यह बात कल भी सत्य थी, आज भी है और रहती दुनिया तक सत्य रहेगी कि पालना झुलाने वाले हाथ ही विश्व पर शासन करते हैं।''[10]

''सन् 1917 ई0 में सरोजनी नायडू के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल स्त्रियों की दशा में सुधार की माँग करने की श्रृंखला के तहत मांटेग्यू चेम्सफोर्ड समिति से मिला तथा उनके समक्ष यह माँग रखी कि ''स्त्रियों के लिए बेहतर शैक्षणिक सुविधाएँ, उन्नत स्वास्थ्य तथा प्रसूति सेवाएँ और पुरुषों के समान ही वोट देने का अधिकार दिया जाए।''[11] इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में भी महिलाओं की सहभागिता बढ़ रही थी। सन् 1920 ई0 के दशक तक महिला अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में दो सिद्धान्त महत्वपूर्ण थे। ''प्रथम यह कि महिलाएँ सामाजिक तौर पर माँ की भूमिका में अधिक उपयोगी है इसलिए उनके अधिकारों को मान्यता दी जानी चाहिए। दूसरा यह था कि महिलाओं की जरुरतें, इच्छाएँ व क्षमताएँ पुरुषों के समान ही आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है, इसलिए महिलाएँ भी अधिकारों की हकदार हैं।''[12] वास्तव में ऐनी बेसेण्ट व सरोजनी नायडू जैसी महिला नेताओं ने कांग्रेस में शामिल होकर अपनी मौजूदगी का जो अहसास दिलाया है, उससे प्रेरित होकर आम जनता की महिलाओं ने भी राजनीति व राष्ट्रीय संघर्ष में शामिल होने के लिए आगे आयी।

1915 ई0 तक गाँधी जी का राष्ट्रीय आन्दोलन में पदार्पण हो चुका था तथा उनके द्वारा चलाये आन्दोलनों में भी महिलाओं ने बड़ी संख्या में प्रतिभाग लिया। ''सन् 1920–22 में जब असहयोग आन्दोलन शुरु हुआ तो पहली बार महिलाएँ भारी संख्या में आन्दोलन से जुड़ी। जिसमें चरखा चलाने व सूत काटने जैसी गतिविधियों के साथ खादी का विस्तृत प्रचार हुआ तथा उसे लोकप्रिय बनाने के लिए जुलूस निकाले गये तथा विदेशी कपड़ों की होली जलायी गयी। शराब की दुकानों पर धरना दिया और शराब लाइसेंस की नीलामी को रोका।[13] इसी आन्दोलन में ''महिलाओं ने स्वयं कार्यकर्ता के रूप में अपना योगदान देना आरम्भ किया। महिला स्वयंसेवी कार्यकर्ता का उद्देश्य स्वराज तथा महिलाओं का उद्धार तथा उत्थान था जो परस्पर सम्बन्धित थे।''[14] इसके पश्चात् तो महिलायें अनेक आन्दोलनों जैसे श्रमिक आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, नमक सत्याग्रह आन्दोलन, भारत छोड़ो आन्दोलन आदि सभी राष्ट्रीय आन्दोलनों में महिलाओं ने बड़े पैमाने पर अपनी भूमिका निभायी। ''जैसे–जैसे राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्र होता गया, वैसे–वैसे महिलाओं की इन आन्दोलनों में भागीदारी भी बढ़ती गयी तथा महिलाओं के मुद्दे सार्वजनिक चर्चा में आये। साथ ही इन आन्दोलनों एवं महिला संगठनों में महिलाओं की गरीबी, अशिक्षा, बेहतर जीवन स्तर, व्यावसायिक प्रशिक्षण जैसे मुद्दों को प्रधानता दी गयी तथा इन सभी विषयों को राष्ट्रीय आन्दोलन व विदेशी शासन की मुक्ति से जोड़ा गया।''[15] इन आन्दोलनों में शान्तिपूर्वक अपनी भूमिका निभाने के अतिरिक्त काफी संख्या में महिलाएँ एवं नवशिक्षित छात्राएँ क्रान्तिकारी आन्दोलनों में भी अपनी सक्रिय भूमिका के साथ शामिल हुई। ''क्रान्तिकारी आन्दोलनों की शुरुआत में इनका काम सीमित था, जैसे क्रान्तिकारियों को घर में शरण देना, प्रचार करना, धन एकत्र करना, हथियारों को इकट्ठा करना तथा एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना एवं विस्फोटक बम बनाना इत्यादि।''[16] धीरे–धीरे वे प्रत्यक्ष गतिविधियों में भी शामिल की गयी तथा वे कोर ग्रुप का हिस्सा भी बनी तथा ''कई महिलाएँ क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय रूप से अपनी भागीदारी निभाई। जिनमें बीनादास, कल्पना दत्ता व प्रीतिलता वाडेकर जैसी महिलाओं के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने स्वयं क्रान्तिकारी बनने का निर्णय लिया।[17] किन्तु इन आन्दोलनों में शामिल महिलाओं को क्रान्तिकारी पुरुषों के जितना सम्मान व अधिकार कभी नहीं प्राप्त हुआ अपितु उनका अनेक स्तरों पर समाजीकरण किया गया। ''1940 ई0 के दशक में देश के स्वाधीन होने के आसार दिखने लगे थे तब महिला आन्दोलन पूरी तरह से स्वाधीनता आन्दोलन में समाहित हो गया था।''[18] ''1942 ई0 के भारत छोड़ो आन्दोलन में हजारों की संख्या में महिलाएँ शामिल हुई। कई महिलाएँ भूमिगत होकर आन्दोलन में सहयोग किया तथा समानान्तर सरकार बनाने में सहायक हुई। इन आन्दोलनों में महिलाएँ बड़े पैमाने पर आत्म–रक्षा सम्बन्धी प्रशिक्षण प्राप्त किया। लाठी चलाने का प्रशिक्षण लिया आदि कई प्रकार से सशस्त्र संघर्ष में भागीदारी की। राष्ट्रवादियों द्वारा महिलाओं के अधिकारों व कार्यों को स्वतंत्रता संघर्ष से जोड़ दिया गया तथा ऐसा प्रदर्शित किया गया कि महिलाओं की मुक्ति सम्बन्धी सभी मुद्दों का हल देश की स्वतंत्रता में है। यह बात बड़ी गहराई से महसूस की जा रही थी कि स्वतंत्रता प्राप्ति से महिला एवं पुरुषों के मध्य गैरबराबरी की खाई समाप्त हो जायेगी।''[19] यह माना जा रहा था कि देश की स्वतंत्रता से देश में महिलाओं की समस्यायें दूर हो जायेगी। महिला कार्यकर्ताओं को महिला मुक्ति का प्रतीक और स्वतंत्रता के ठोस आधार की तरह देखा जा रहा था। स्वतंत्रता की दहलीज पर महिलाओं के आन्दोलन के तीन प्रमुख बिन्दु थे। प्रथम देश की रक्षा, दूसरा राष्ट्रीय नेताओं की रिहाई एवं राष्ट्रीय सरकार का गठन तथा तीसरा भूख और मौत से लोगों की सुरक्षा। इन तीनों मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बड़े पैमाने पर स्त्रियों के आन्दोलन की जरुरत महसूस की गयी।''[20] राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं के सक्रिय होने से उनको सार्वजनिक जीवन में एक नया आत्मसम्मान, एक नया विश्वास और एक नई आत्म छवि का स्वरूप दिखाई दिया, जिससे वे निष्क्रिय के बजाय एक सक्रिय कार्यशील नागरिक एवं सुधारक बनीं।

''राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं के समान रूप से भाग लेने के पश्चात् भी राष्ट्रवादियों ने उन्हें भौतिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर विभाजित कर महिलाओं के योगदान को वैचारिक रूप से सीमित कर दिया गया। भारत के सामाजिक अवधारणा के अनुसार राष्ट्रवादियों ने महिलाओं के घर के बाहर की गतिविधियों को भौतिक एवं घर के अन्दर कार्यों को आध्यात्मिक कार्य बताया तथा महिलाओं के आध्यात्मिक क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया तथा पुरुष राष्ट्रवादियों ने महिलाओं के घर तथा घरेलू भूमिका को अधिक महिमामंडित किया। राष्ट्रवादियों ने महिलाओं की समाज में एक अधीनस्थ भूमिका निर्धारित की और इस दृष्टिकोण के तहत् यह माना गया कि महिलाएँ पुरुषों का ही भाग हैं और उनका कोई अलग राजनीतिक अस्तित्व नहीं है।''[21] यद्यपि राष्ट्रीय आन्दोलन में माँ की छवि के रूपक का इस्तेमाल किया गया। ''बीसवी सदी के पूर्वार्द्ध में माँ के प्रतीक को जनसमूह एकत्र करने के लिए उपयोग किया गया उन्हें शक्ति स्वरूप एवं राष्ट्रमाता की संज्ञाएँ दी गयी एवं गाँधीजी ने सहनशील एवं त्यागमयी माँ के रूप में देखा। इस प्रकार भारत में महिलाओं को देवी एवं माँ का दर्जा तथा मिथकीय प्रेरणा देकर एक उच्च आसन पर बैठाया, जिसके तहत् महिलाओं में आत्म–त्याग, परोपकारिता, सेवा निष्ठता, धर्म परायणता आदि हमारी संस्कृति के सभी आध्यात्मिक गुणों का सम्मिश्रण बताया गया।''[22] इन आध्यात्मिक गुणों के कारण स्वतंत्रता संघर्ष में महिलाओं को घर की सीमा से बाहर निकलने में कोई कठिनाई नहीं हुई तथा उन्होंने बढ़–चढ़कर आन्दोलनों में भाग लिया। वास्तव में यदि इस नजरिए से हम राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी को देखते हैं तो वह उनकी घरेलू भूमिका का 'विस्तार मात्र' ही प्रतीत होता है, जिसमें महिलाओं की उपर्युक्त आध्यात्मिक गुणों के आधार पर की गयी भागीदारी को राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषों के समान कोई चुनाव या स्वतंत्र कार्य करने की सम्भावना नहीं थी। ''साथ ही इन आन्दोलनों में महिलाओं की भागीदारी न तो उनके घरेलू जीवन या पारिवारिक समीकरणों में कोई अन्तर आया से न ही उनकी जीवन

शैली में कोई परिवर्तन आया तथा उनकी राजनीतिक भूमिका में भी कोई बदलाव नहीं आया। अधिकांशतः महिलाओं को जिन प्रतिरोध आन्दोलन में शामिल करने के लिए जिस रणनीति एवं ढाँचा का निर्माण हुआ उससे उनका राजनीतिकरण सम्भव नहीं था, न ही राजनीति में निरन्तर उनकी भागीदारी मान्य हुई एवं कालान्तर में न ही उनके हितों की रक्षा हुई। खादी कार्यक्रम के तहत् सूत काटना एवं वस्त्र बुनना महिलाओं का मुख्य कार्य था, जिससे त्याग की मूर्ति स्वरूप उनके सार्वजनिक महत्वाकांक्षाओं एवं सम्पत्ति अर्जन पर रोक लगा दी गयी। सूत काटने एवं वस्त्र बुनने के कार्य में कोई व्यावसायिक एवं व्यापारिक गतिविधि नहीं थी।''[23]

वास्तव में देखा जाय तो राष्ट्रवादियों ने महिलाओं की भीतरी या बाहरी राजनीतिक गतिविधियों में परम्परा से हटकर कुछ बदलाव लाने की सोची ही नहीं। ''महिलाओं का कार्यक्षेत्र घर था, उनकी पोषक और त्यागमयी माँ की छवि को ही प्रधानता दी गयी। इस बात पर विशेष जोर दिया जाता रहा कि महिलाएँ सार्वजनिक क्षेत्र में जायें तो भी अपने नारी सुलभ (आध्यात्मिक) गुण नहीं छोड़े। राष्ट्रवादियों को महिलाओं की मुक्ति तथा उत्थान से कोई सरोकार नहीं था, इसके विपरीत महिलाओं की पत्नी, पुत्री और माँ की भूमिकाओं की और पुष्टि हुई, केवल राष्ट्रीय आन्दोलन की आवश्यकताओं को देखते हुए उसमें थोड़ा अधिकार विस्तार मिल गया।''[24] राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका का दायरा सीमित था। इससे इतर 20वीं सदी में अनेक महिलाएँ जो कि निम्न वर्ग की थी उन्होंने भी डॉ0 भीमराव आंबेडकर के नेतृत्व में चलाये गये सामाजिक आन्दोलनों जैसे महाड़ का चवदार तालाब का सत्याग्रह, कालाराम मन्दिर प्रवेश, सत्याग्रह एवं येवला धर्मांतरण घोषणा इत्यादि में महिलाओं ने सक्रिय रूप से भागीदारी निभायी।

डॉ0 आंबेडकर ने सन् 1920 ई0 से भारतीय समाज व राजनीतिक आन्दोलन में सार्वजनिक रूप से सम्मिलित हुए। उनके कार्य का मुख्य उद्देश्य समाज के शोषित वर्ग एवं असमानता के शिकार व हाशिये पर रहने वाले वर्ग के लोगों के अधिकारों के लिए संघर्ष करना था, जिनमें महिलाएँ भी शामिल थी। ''डॉ0 आंबेडकर द्वारा मार्च 1927 ई0 में आरम्भ किये गये 'महाड़ सत्याग्रह' आधुनिक भारत के इतिहास की एक अति महत्वपूर्ण घटना है। जिसके तहत् महाड़ नगरपालिका (महाराष्ट्र) में चवदार तालाब से सभी को पानी पीने का अधिकार मिले, इस हेतु संघर्ष किया गया, जिसमें हजारों की संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। यह घटना एक ऐतिहासिक घटना है, जिसमें सदियों से मानवाधिकारों से वंचित स्त्रियों तथा शोषित वर्गों के समानता व स्वतंत्रता के अधिकार चेतना का उदय हुआ।''[25] इस सत्याग्रह के माध्यम से डॉ0 आंबेडकर ने महिलाओं और शोषित वर्ग में चेतना की चिंगारी फूंकी। महाड़ सत्याग्रह के पश्चात् ''डॉ0 आंबेडकर ने 25 दिसम्बर 1927 ई0 को हिन्दू धर्मग्रन्थ मनुस्मृति को जला दिया, जिसमें महिलाओं और दलित वर्ग को नारकीय जीवन जीने तथा स्त्रियों व दलितों के पठन–पाठन पर प्रतिबन्ध लगाये थे।''[26] इतना ही नहीं अपितु डॉ0 आंबेडकर दलित महिलाओं को स्वच्छ एवं शालीन वस्त्र धारण करने तथा शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। ''डॉ0 आंबेडकर ने मार्च 1930 ई0 में महाराष्ट्र के नासिक में कालाराम मन्दिर प्रवेश सत्याग्रह में लगभग 500 महिलाएँ शामिल हुई तथा इस आन्दोलन में सफल हुई।''[27] ''डॉ0 आंबेडकर प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने स्त्रियों व दलितों को अपने पावों पर खड़े होकर अपने हकों के लिए लड़ने हेतु प्रेरित किया। दूसरों की दया पर जीने के बजाए अपना हक माँगने की ताकत पैदा करने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने इस देश की महिलाओं एवं दलितों को जो मूल मंत्र दिया 'अपनी सहायता श्रेष्ठ सहायता' है। डॉ0 आंबेडकर ने सभी नागरिकों के लिए मानवीय अधिकारों को समान रूप से बहाल करने की प्राथमिकता दी, जिन्हें प्रत्येक शासन द्वारा नकारा गया था।''[28]

वास्तव में डॉ0 आंबेडकर नहीं चाहते थे कि स्वतंत्र भारत में भी महिलाओं और शोषित वर्ग को उनके मानवीय अधिकारों से तिरस्कृत किया जाय। उनके अनुसार नर और नारी समाज रूपी गाड़ी के दो पहिये होते है, जिसे सुचारू रूप से चलाने के लिए दोनो पहियों को समान रूप से सबल होना आवश्यक है। यदि इनमें से कोई एक कमजोर हुआ तो गाड़ी लड़खड़ा कर गिर सकती है। अतः वे नहीं चाहते थे कि स्वतंत्र भारत में भी महिलाओं एवं पुरुषों के अधिकारों में यह असमानता की दरार बनी रहे, इसलिए उन्होंने संविधान में महिलाओं एवं पुरुषों को समान अधिकार प्रदान किये। संविधान निर्माण का कार्य डॉ0 आंबेडकर का पवित्र मिशन था, जिसके द्वारा वह देश को एक मजबूत शक्ति, उत्तम स्वास्थ्य, सम्पदा, सम्मान एवं उन्नत संस्कृति प्रदान करने में सफल हुए।

सन्दर्भ

1. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता : नारीवादी राजनीति, संघर्ष एवं मुद्दे, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2001, पृ0 155
2. Dr. Tapan Rai Choudhary, Dr. S. Bhattacharya, Dr. Uma Das Gupta : The Cultural Heritage of India, Vol. VIII (The Making of Modern India (1765-1947], Ramkrishna Math and Ramkrishna Mission, Belur Math, Kolkata, 2013, p. 81
3. राधा कुमार : स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ0 95
4. वही, पृ0 96
5. वही, पृ0 122
6. Samita Sen - Policy Research Report on Gender and Development : Toward a Feminist Politics? The Indian Women's Movement in Historical Perspective, The World Bank Develoment Research Group/Poverty Reduction and Economic Management Network, April 2000. p. 15
7. वही, पृ0 16
8. Sumit Sarkar and Tanika Sarkar : Women and Social Reform in India, Vol. II, Indiana University Press, 2008, p. 180
9. Report of the Child Marriage Restraint Act, 1929, www.wcd.nic.in
10. राधा कुमार : स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ0 112
11. वही, पृ0 121
12. Geraldine Forbes : The New Cambridge History of India, Vol. IV.2 (Women in Modern India), Cambridge University Press, 1996, p. 47
13. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता : नारीवादी राजनीति, संघर्ष एवं मुद्दे, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2001, पृ0 158
14. वही, पृ0 159
15. R.C. Mazumdar : The History & Culture of the Indian People, British Paramountcy and Indian Renaissance, Vol. II, Bharti Vidya Bhawan, New Delhi, 1993, p. 180
16. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता : नारीवादी राजनीति, संघर्ष एवं मुद्दे, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2001, पृ0 165

17. राधा कुमार : स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ0 183
18. वही, पृ0 183
19. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता : नारीवादी राजनीति, संघर्ष एवं मुद्दे, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2001, पृ0 166
20. वही, पृ0 168
21. वही, पृ0 172
22. राधा कुमार : स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ0 193
23. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता : नारीवादी राजनीति, संघर्ष एवं मुद्दे, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2001, पृ0 174
24. वही, पृ0 175
25. Champa Limaye : Women, Power and Progress, B.R. Publication, New Delhi, 1998, p. 56.
26. वही, पृ0 57
27. वही, पृ0 58
28. Thomas Maithew - Ambedkar Reform and Revolution, Segment Books, New Delhi, 1991, p. 74.